such checks, grievances of staff are reduced to the minimum employees may meet Sr. DPO and other welfare staff with the permission of their immediate supervisors for representing their grievances.

From the above discussion it is clear that Danapur division of East Central Railway Zone provides a number of statutory and non-statutory welfare facilities for the benefit of the employees working under the division. The statutory benefits such as P.F., Pension, Gratuity and Group Insurance are paid to the employees after their retirement or to the family in case of death while in service. These facilities have really fill up the sense of confidence and security among the railway employees and the confidently contribute the maximum to the goal of the organization. Certain non-statutory facilities such as schools for the children of railway employees, hospitals for the treatment of employees and family members of railway employees, reimbursement of tuition fee and scholarship of the school and college going children of railway employees, institutes and club facilities provision of housing facilities, pass facilities, canteen facilities, creation of staff benefit fund, mahila samitees etc., have immensely benefited the railway employees to keep them satisfied with their job.

National Pension Scheme started with the decision of the Govt. Of India to stop definedbenefits pensions for all its employees who joined after 01.01.2004. The change in NPS was notified through change in the income tax act 1961, during the 2019 union budget of India. NPS is limited EEE to the extent of 60%.

जैन धर्म में अष्टांग योग : एक अनुचिंतन

डॉ. नवल किशोर पाण्डेय*

तत्वार्थ सूत्र में मोक्ष प्राप्ति के लिए आचार्य उमास्वाति ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चरित्र को बताया है जिसे आचार्य हेमचन्द्र ने योग कहा है। योग वह है जो मोक्ष से योग कराये ऐसा आचार्य हरिभद्र सूरि का मत है। पातंजल योगसूत्र इस सिद्धांत से अलग योग के लक्षण को बतलाया गया है जिसे हम अष्टांग योग के नाम से जानते हैं। अष्टांग योग के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है–

1. **यम** – पांतजल योग में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को पाँच यमों के नाम से पुकारा गया है। जैन दर्शन में इन पाँचो यमों को पंच महाव्रत कहा गया है।
2. **नियम** – पातंजल योग में नियम पाँच माने गए है। जैसे शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान। जैन दर्शन की तुलना करने पर हम देखते हैं कि यहाँ नियम के स्थान पर योग संग्रह का विवेचन उपलब्ध है। जैन आगम समवायांग में निम्न 32 योग संग्रह हैं–
   (i) आलोचना– जैन दर्शन में बत्तीस योग–संग्रह में प्रथम आलोचना है। इसके अन्तर्गत व्रत शुद्धि के लिए अपने किए हुए पापों के गुरुजनो के आगे आलोचना करना आता है।
   (ii) निरपलाप– द्वितीय योग संग्रह के अन्तर्गत निरपलाप है। इसके अन्तर्गत शिष्य के दोषों को आचार्य किसी के आगे न कहे।
   (iii) आपत्सुदृढ़धर्मिता – आपत्सुदृढ़धर्मिता के अन्तर्गत कष्ट प्राप्ति होने पर भी दृढ़ रहना कहा गया है।
   (iv) अनिश्रितपोधन–चतुर्थ योग संग्रह के अन्तर्गत अनिश्रितपोधन है। इसके अन्तर्गत किसी आश्रय की अपेक्षा न करते हुए तप करना कहा गया है।
   (v) शिक्षा–संग्रह– यह पाँचवा योग संग्रह है। इसके अन्तर्गत शिक्षा का पालन करना है।
   (vi) निष्प्रतिकर्मता – शरीर का शृँगारादि न करना इस छठे योग–संग्रह के अन्तर्गत आता है।
   (vii) अज्ञातता – यह सातवाँ योग–संग्रह है। जैन आगम समवायांग के इस

***सहायक प्रोफेसर, प्राकृत विज्ञान, पयहारी महाराज जी कॉलेज, आरा, बिहार**

योग संग्रह के अन्तर्गत पूजा आदि के लिए अपने तप को प्रकट न करना है।

(viii) अलोभता – अलोभता के अन्तर्गत लोभ का परित्याग है।

(ix) तितिक्षा – तितिक्षा के अन्तर्गत भूख प्यास आदि परिषदों को सहन करना है।

(x) आर्जव – आर्जव के अन्तर्गत अपने व्यवहार को निश्छल एवं सरल रखना कहा गया है।

(xi) युचि– ग्यारहवे योग संग्रह के अन्तर्गत सत्याचरण का पालन करना माना गया है।

(xii) सम्यग्दृष्टि – सम्यग्दृष्टि के अन्तर्गत शंका–काक्षादि दोषों को दूर करते हुए पवित्र रखा माना गया है।

(xiii) समाधि – चित्त्र को संकल्प–विकल्पों से रहित करना समाधि है।

(xiv) आचारोपगत – अपने आचरण को माया आदि दोषों से रहित करना आचारोपगत के अन्तर्गत आता है।

(xv) विनयोपगत – विनयशील होना इसके अन्तर्गत है।

(xvi) धृतिमति– अपनी बुद्धि में धैर्य रखना, दीनता न करना धृतिमति है।

(xvii) सवेग – इसके अन्तर्गत संसार से भयभीत होकर मोक्ष की अभिलाषा करना माना गया है।

(xviii) प्रणिधि – माया–शल्य न रखना समवायांग के 32 योग संग्रह में सत्तरहवाँ है।

(xix) सुविधि– सुविधिसदनुष्ठान इसके अन्तर्गत आता है अर्थात् सम्यक् परिपालन करना।

(xx) संवर–कर्मो के आने के द्वारों का निरोध करना इसके अन्तर्गत आता है।

(xxi) आत्मदोषोपसंहार– इसके अन्तर्गत दोषों का निरोध करना आता है।

(xxii) सर्वकाम विरक्ता – सब विषयों से विरक्त रहना सर्वकाम विरक्ता के अन्तर्गत आता है।

(xxiii) मूलगुण प्रत्याख्यान– अहिंसा अदि मूलगुण–विषयक प्रत्याख्यान करना इसके अन्तर्गत आता है।

(xxvi) उत्तरगुणप्रत्याख्यान– इसके अन्तर्गत इन्द्रिय निरोध आदि उत्तर गुणों का शुद्ध पालन करना माना है।

(xxv) व्युत्सर्ग– वस्त्र–पात्र आदि बाहरी उपाधि और मूर्च्छा आदि आभ्यन्तर उपाधि का परित्याग करना है।

(xxvi) अप्रमाद – दैवसिक और रात्रिक आवश्यकताओं के पालन आदि में प्रमाद न करना अप्रमाद है।

(xxvii) लवालव– लवालव के अन्तर्गत प्रतिक्षण सामाचारी के परिपालन में सावधान रहना माना गया है।

(xxviii) ध्यान संवर योग – धर्म और शुक्ल ध्यान की प्राप्ति के लिए आस्रव–द्वारों का संवर करना ध्यान संवर योग माना गया है।

(xxix) मारणान्तिक – कर्मोदय के क्षय होने पर भी क्षोभ न करना मारणान्तिक है।

(xxx) संग–परिज्ञा–संग (परिग्रह) का परित्याग करना संग परिज्ञा है।

(xxxi) प्रायश्चित्तकरण – इसके अन्तर्गत अपने दोषों की शुद्धि के लिए प्रायश्त्तिकरण है।

(xxxii) एवं (xxxiii) मारणान्तिक आराधना – मरते समय संलेखनापूर्वक ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप की विशिष्ट आराधना करना मारणान्तिक आराधना है।

3. **आसन** – योग दर्शन में योग का तीसरा अंग आसन माना गया है। आसन स्थिर एवं सुख देने वाले बैठने के प्रकार को कहा गया है। जैन परम्परा में बाह्य तप के पाँचवे काय क्लेश में आसनों का भी समावेश है। औपपातिक सूत्र एवं दशाश्रुत–स्कंध सूत्र में वीरासन, वज्रासन, भद्रासन, गोदोहासन, सुखासन आदि अनेक आसनों का विवेचन किया गया है। इस प्रकार आसन को भी जैन परम्परा में साधन का एक अंग माना गया है।

4. **प्राणांयाम** – प्राणायाम योग का चौथा अंग है। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पाँच प्राण वायु माने गए हैं। इन पर विजय प्राप्त करने का नाम प्राणायाम है। इसके रेचक, पूरक और कुम्भक तीन भेद है। जैन आगमों में प्राणायाम सम्बन्धी कोई विवेचना उपलबंध नहीं है। यद्यपि आचार्य शुभचन्द्र के ज्ञानार्णव और आचार्य हेमचन्द्र के योग शास्त्र में सविस्तार वर्णन है।

5. **प्रत्याहार** – प्रत्याहार इन्द्रियों की बहिर्मुखता को समाप्त कर उन्हें अन्तर्मुख करना है। जैन दर्शन में प्रत्याहार के स्थान पर प्रतिसंलीनता शब्द का प्रयोग हुआ है। यह चार प्रकार की मानी गयी है–
   1. इन्द्रिय
   2. कषाय
   3. योग एवं
   4. विविक्त शयनासन सेवनता

   इस प्रकार योग दर्शन के प्रत्याहार का समावेश जैन दर्शन की प्रतिसंलीनता की धरणा में हो जाता है।

6. **धरणा** – योग का छठा अंग धरण है। चित्त की एकाग्रता के लिए उसे किसी एक स्थान विशेष पर केन्द्रित कर देना धारण है। धारण का विषय प्रथम स्थूल

होता है जो क्रमशः सूक्ष्म और आगे सूक्ष्मतर बनता चला जाता है। जैन आगमों में धरणा का स्वतंत्र रूप में विवेचन नहीं मिलता यद्यपि उनका विवेचन ध्यान के एक अंग के रूप में अवश्य हुआ है। दशाश्रुतस्कंध सूत्र में श्रमण प्रतिमाओं का विवेचन करते हुए एक पुद्गल विविष्ट दृष्टि का विधान किया गया है।

7. **ध्यान** – ध्यान योग का सातवां अंग है। ध्यान का अर्थ होता है ध्येय अथवा ध्यान के विषय पर लगातार मनन और चिंतन करना। इस अवस्था में चित्त एक विषय में स्थिर रहता है। केवल जैन परम्परा में भी ध्यान का अर्थ चित्तवृत्तियों को स्थिर करना ही है।

8. **समाधि** – समाधि योग का अंतिम चरण है। चित्तवृत्ति का स्थिर हो जाना या उसका क्षय हो जाना ही समाधि है। जैन परम्परा में समाधि शब्द का प्रयोग तो बहुलता से हुआ है लेकिन उसमें इसे ध्यान से पृथक नहीं माने गए है। जैन दर्शन के शुक्ल ध्यान की व्यवस्थाएँ समाधि के समकक्ष है। समाधि के दो विभाग किये गये हैं– (1) सम्प्रज्ञात समाधि और (2) असम्प्रज्ञात समाधि।

सम्प्रज्ञात समाधि शुक्लध्यान के प्रथम दो प्रकार पृथकत्व वितर्क, सविचार और एकत्व वितर्क अविचार के समकक्ष है और असंप्रज्ञात समाधि का अन्तर्भाव शुक्ल ध्यानत्व के अन्तिम दो प्रकार सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती और समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति में हो जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है अिष्टांग योग में केवल प्राणायाम को छोड़कर शेष सभी का जैन आगमों में विवेचन है। जैन परम्परा में योग की अष्टांग व्यवस्था नहीं है। यहाँ हरिभद्र सूरि ने योग के पाँच प्रकार बताए हैं–

(1) स्थान – कायोत्सर्ग, पर्यक, पद्मासन, आदि आसन।
(2) उर्ण–वर्ण – शब्द का उच्चारण, मंत्र, जप आदि।
(3) अर्थ – नेत्र आदि का वाच्यार्थ।
(4) आलम्बन – द्रव्य में मन को केन्द्रित करना।
(5) रहित – निरालम्ब या निर्विकल्प चिन्मात्र समाधिरूप।[1]

इनमें से प्रथम दो को कर्मयोग और शेष तीनों को ज्ञान योग कहा गया है।

जैन योग और पातंजल योग के प्रकार बहुत कुछ एक से हैं। हरिभद्र सूरि ने योग की जो पंचाग व्यवस्था की है, वह नवीन है। प्राचीन व्यवस्था द्वादशांग की है जिसे तप कहते है। तप के 12 (द्वादश) अंग है। द्वादशांग योग–जैनागम के बारह भेद बताया गया है।[2] इन बारह भेदों में विभक्त तपोयोग की द्वादशांग व्यवस्था पायी जाती है–

(1) अनशन – सभी प्रकार के आहार का अल्पकालीन या दीर्घकालीन त्याग अनशन है।

अवमौदर्य – भूख से कम खाना अवमौदर्य है।

वृत्तिपरिसंख्यान – भिक्षाटन के नियमों का पालन करते हुए भिक्षाटन द्वारा जीवनयापन करना वृत्ति परिसंख्यान है। ऐसा करना आत्मपीड़न नहीं बल्कि देह को प्रशिक्षित करना, देह से ममत्व हटाना है। जितना अधिक शरीर में लगाव होता है उतना ही शरीर के साथ सम्बन्ध होता है, प्रमाद एवं मूर्च्छा गहन होती है। मूर्च्छा को तोड़ना साधना का प्रथम संकल्प है–

(क) आहारपच्चक्खाणेणं जीविया संसप्पओग वोच्छिन्दई।[3]
(ख) विषया निविवर्तन्ते निराहास्य देहिनः।[4]

वीरासन, भद्रासन आदि आसनों का संपादन काय–क्लेश है।

ठाणा वीरासणाईया जीवस्स उ सुहारहा।
उग्गा जहा धरिज्जति कायकिलेस तयाहियं।।[5]

ये चारों तप शरीर को प्रशिक्षित कर उसकी शुद्धि करते है।

रसपरित्याग– सामान्य रूप से सभी इन्द्रियों से प्राप्त सुख का त्याग।

संलीनता – एकांतवास और इन्द्रिय–भोग का त्याग संलीनता है।

प्रायश्चित्त – अपने दोषों को स्वीकार कर विनय और अहंकार का त्याग होता है।

स्वाध्याय – अर्थात् सत्शास्त्र या आत्मा के स्वरूप का चिंतन। स्वाध्याय से अज्ञान एवं क्लेश की निवृत्ति होती है।

सुयस्स आराहणयाए अन्नाणंखवेई न य संकिलिस्सई।6

ये तीनों तप मन की शुद्धि करते है। कायोत्सर्ग शरीर के ममत्व का त्याग है तो ध्यान मन की स्थिरता है। इस प्रकार ये दोनों तप आत्मा को शरीर और मन के क्षेत्र से परे पहुँचाते हैं। जबकि पातंजल योग में आठ में से पाँच अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार को बहिरंग के रूप में और धारणा, ध्यान समाधि को अंतरंग के रूप में स्वीकार किया गया है।

तदेतत् धरणां ध्यानं समाधित्रय अन्तरंगम्।
सप्रशान्तस्य समाधिः पूर्वेभ्योः यमादिसाधनेभ्यः इति।।[7]

संदर्भ सूची :

1. मुनि नथमल, तुम अनन्त शक्ति के स्रोत हो, पृष्ठ 4.
2. तत्वार्थसूत्र 6/19
3. उत्तराध्ययन सूत्र, 29/35.
4. गीता 2/56
5. उत्तराध्ययन
6. उत्तराध्ययन सूत्र 29/24
7. योगभाष्य 3/7.